ॐ

पांडिचेरी के परम हंस

लेखक
आचार्य अभयदेवजी

श्रीअरविन्द निकेतन
डाकपेटी ८५
कनाट सर्कस, नई देहली ।

मूल्य चार आना

पांडिचेरी के परमहंस

श्रीअरविन्द उन महापुरुषों में से हैं जो संसार में कभी-कभी उत्पन्न होते हैं। उनकी महानता अभी संसार को विदित नहीं है, पर मेरी ऐसी श्रद्धा है कि एक दिन संसार उसे अवश्य जानेगा।

ऐसे महापुरुष के विषय में भी भारतवर्ष में और विशेषतः उत्तर भारत में लोगों को बहुत कम परिचय है। इसका कारण यही है कि इस विज्ञापन और प्रचार के युग में भी उनको विज्ञापनबाजी-प्रोपेगन्डा-में ज़रा भी विश्वास नहीं है। सत्य में, सत्य-स्वरूप परमेश्वर में प्रतिष्ठित होने के कारण उन्हें संसार की और किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं है। वे स्पष्ट देखते हैं कि जो सत्य है, वह स्वयमेव प्रकट होता है, सूर्य की तरह उदित होता है; और जो उससे लाभ उठाना चाहते हैं, वे स्वयं उसके लिए आकृष्ट होते हैं। दस-बारह वर्ष पहले की बात है, जब कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर यूरोप जाने लगे तो वे श्रीअरविन्द से मिलने आये। उस समय उन्होंने श्रीअरविन्द से कोई सन्देश माँगा, जिसे वे वहाँ जाकर सुना सकें। श्रीअरविन्द का उत्तर था, 'मैं सत्य को दूसरों के दरवाजे पहुँचाने में विश्वास नहीं रखता'—(I do not believe in bringing truth to another's door) जिसको मुझसे कुछ लेना होगा वह मेरे पास आयेगा। यही कारण है कि हम

लोग इनके विषय में कुछ भी नहीं जानते, अधूरा जानते हैं या भ्रमपूर्ण बातें जानते हैं।

ईश्वर-कृपा से पिछले पाँच-छः वर्षों से मुझे श्रीअरविन्द-आश्रम में जाकर वर्ष में ४, ५ महीने तक रहने का अवसर होता है और मैं आश्रम से संबद्ध हो चुका हूँ। इसी निकट परिचय के आधार पर मैं श्रीअरविन्द-आश्रम के विषय में पाठकों को कुछ जानकारी देने का यत्न करूँगा।

१ श्रीअरविन्द की सिद्धि

सरकार श्रीअरविन्द को शायद अब तक भी एक भयंकर विद्रोही समझती है। भारत की शिक्षित जनता उनको एक महान् देशभक्त के रूप में पूजती है। इसी कारण उनको कई बार काँग्रेस के अध्यक्ष-पद के लिए निमंत्रित किया जा चुका है। पर वे अब इस स्थिति से ऊपर हो चुके हैं। अब से लगभग तेंतीस वर्ष पूर्व अर्थात् उन्नीस सौ दस में वे अपने तीन पागलपन बताते हुए इधर आये थे। अपना सर्वस्व भारतमाता के चरणों में समर्पित करना, भारतमाता को बन्धन-मुक्त करना और तीसरे, भगवान् का साक्षात्कार, ये थे उनके तीन पागलपन। पर शीघ्र ही पहली दो बातें, तीसरी विराट साधना में समा गईं। पांडिचेरी पहुँच कर वे पूरी तरह योग-साधन में लीन हो गये। पाठकों को आश्चर्य होगा कि पिछले पच्चीस वर्षों से वे अपने मकान से बाहर तक नहीं निकले। वे योग के जिस ध्येय के लिए

साधना कर रहे थे, उसमें उनको सन् उन्नीस सौ छब्बीस (१९२६) की चौबीस (२४) नवम्बर को सफलता प्राप्त हुई। तभी से श्रीअरविन्द ने अन्य साधकों को भी योग-साधना में सहायता करने का कार्य अपने ऊपर लिया। यहीं से श्रीअरविन्द-आश्रम का वास्तविक आरम्भ होता है।

२ माताजी

आश्रम की व्यवस्था के विषय में जानने के लिए माताजी के व्यक्तित्व को जानना बहुत आवश्यक है। माताजी जन्म से एक फ्रेंच महिला हैं। इनका नाम है मिरादेवी। आश्रम में सभी उन्हें माताजी, मा, मदर (Mother) इसी नाम से जानते या संबोधित करते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से वे श्रीअरविन्द के समकक्ष ही मानी जाती हैं। आश्रम का आरंभ होने से पहले जब श्रीअरविन्द अपनी एकान्त साधना में थे, तब कुछेक साधक उनके साथ साधना में रहते थे। इसी बीचमें, अर्थात् उन्नीस सौ चौदह (१९१४) में माताजी भारत में आईं। वे जापान में भी कुछ वर्ष रही हैं। भारत आने से पहले वे यूरोप और उत्तर अफ्रीका में रहकर अपनी साधना करती रही हैं। पांडिचेरी में उनका आना अनायास ही हुआ। श्रीअरविन्द से मिलीं, और तब से आश्रम में रहने लगीं। १९१४ में यूरोपीय युद्ध के कारण उन्हें तुरन्त ही फ्राँस जाने की जरूरत पड़ी। युद्ध के बाद वे फिर यहाँ आईं। माताजी के ही आग्रह से श्रीअरविन्द

ने 'आर्य' पत्र का १६१४ में प्रकाशन आरंभ किया था। परिचय होने पर श्रीअरविन्द को मालूम हुआ कि माताजी की आध्यात्मिक स्थिति बहुत उन्नत है। पर अब तो जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, दोनों की स्थिति एक समझी जाती है। जो बात श्रीअरविन्द को कहनी हो वह निस्संकोच माताजी को कही जा सकती है। जब से आश्रम की स्थापना हुई है—अर्थात् नवम्बर १६२६ से—उसकी सम्पूर्ण व्यवस्था माताजी के ही हाथों में है। और तभी से श्रीअरविन्द किसी से न बात करते हैं और न मिलते हैं। माताजी ही सारा कार्य-संचालन करती हैं। मानो माताजी प्रकृति-रूप हैं, और श्रीअरविन्द पुरुष-रूप।

माताजी भी कम-से-कम बोलती हैं। आवश्यकता होने पर वे साधकों को मिलने का अवसर भी देती हैं। उनके दर्शन आजकल प्रातः ६॥ बजे के लगभग तथा दोपहर को प्रतिदिन हो सकते हैं। किन्तु बिना विशेष आज्ञा लिये उनसे भी कोई वार्तालाप नहीं हो सकता।

माताजी को प्रणाम करने का अवसर भी अनुमति लेकर प्राप्त किया जा सकता है।

माताजी के संपर्क में आने पर ही उनकी महिमा और दिव्यता की कुछ अनुभूति हो सकती है। मुझे उनसे मिलने का प्रथम बार ही जो अवसर हुआ था उसका मुझ पर कुछ विशेष प्रभाव हुआ था, ऐसा कह सकता हूँ।

३ श्रीअरविन्द के दर्शन

श्रीअरविन्द चौबीस नवम्बर उन्नीस सौ छब्बीस से सर्वथा एकान्त-सेवी हो गये थे। तब से उनसे न कोई मिल सकता था, न बात कर सकता था। पर इस सर्वथा एकान्त सेवन के १२ वर्ष बाद १६३८ से (जबकि उनके पैर में चोट लगी थी तब से) ७, ८ साधकों को उनकी सेवा के लिए उनके पास बारी-बारी से उपस्थित रहने की अनुमति हुई है। पर इनके अतिरिक्त अब भी अन्य कोई साधक तक उनके पास नहीं जा सकता। तो अन्य लोगों के आध्यात्मिक कल्याण के लिये यह व्यवस्था की गई है कि वर्ष में चार दिन उनके दर्शन प्राप्त किये जा सकते हैं। वे चार दिन निम्नलिखित हैं—

२१ फेब्रुएरी (माताजी का जन्म-दिन)

२४ एप्रिल (माताजी का पांडिचेरी आ जाने का दिन)

१५ अगस्त (श्रीअरविन्द का जन्म-दिन)

२४ नवम्बर (श्रीअरविन्द का सिद्धि-दिवस)

इन चार दिन जो उनके दर्शन प्राप्त करना चाहें, उन्हें पहले से दर्शन की आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिये। बिना आज्ञा प्राप्त किये किसी को वहाँ नहीं जाना चाहिये। ऐसे ही जाना व्यर्थ भी हो सकता है। पहिले तीन ही दर्शन होते थे। चौथा २४ एप्रिल का दर्शन १६३६ से ही प्रारम्भ हुवा है। इस दिन साधारणतया बाहर के लोगों को दर्शन

की अनुमति नहीं दी जाती। यह दर्शन मुख्यतया आश्रम-वासियों के लिये ही है। मैंने सन् उन्नीस सौ पैंतीस की इक्कीस फेब्रुएरी के दिन प्रथम बार उनका दर्शन-लाभ किया। इस अवसर पर बाहर के लगभग तीन सौ व्यक्ति, भिन्न-भिन्न जगह से, दर्शनार्थ आये थे। पाठकों को यह ध्यान रखना चाहिये कि दर्शन के समय में भी उनसे बातचीत नहीं की जा सकती। दर्शन के लिये लगभग आधा, एक या डेढ़ मिनट (संख्या के अनुपात में) प्रत्येक दर्शनार्थी को मिलता है। प्रथा यह है कि दर्शनार्थी एक नियत क्रम में फूल व मालाएँ लेकर अथवा खाली हाथ जाते हैं, श्रीअरविन्द के और उनकी दाहिनी ओर बैठी माताजी के दर्शन करते हैं। उनकी तरफ़ देखते हुए, ध्यान करते हुए, या प्रणाम करते हुए अपनी-अपनी शैली के अनुसार दर्शनार्थी ये अपने एक-दो क्षण बिता देते हैं। दर्शन में मैंने उनकी मूर्त्ति को चित्र में देखी मूर्ति से अधिक भव्य पाया। उनका कोई भी चित्र पच्चीस बरस से कम पुराना नहीं है। तब से उनका चित्र लेने की कभी अनुमति नहीं मिली।

बहुत-से दर्शनार्थी ऐसा अनुभव करते हैं कि इस दर्शन से उनकी आत्मिक उन्नति होती है। पहली बार पांडिचेरी जाता हुआ जब मैं वर्धा से मद्रास के लिए गाड़ी पर सवार हुआ तो उसी डिब्बे में एक मद्रासी युवक से मेरी भेंट हो गई। वह दर्शन के लिए जा रहा था, पहले भी कई बार

दर्शन कर चुका था। मैंने उससे पूछा कि—तुम क्यों दर्शन करने जाते हो, क्या कौतूहल-वश ? 'इससे मुझे आन्तर बल (Inner strength) प्राप्त होता है'—उसने कहा। 'तुम तो पहले भी दर्शन कर चुके हो, क्या कभी ऐसा अनुभव भी हुआ है ?'—मैंने फिर प्रश्न किया। उसने कहा—हाँ ! तभी तो फिर दर्शन करने की इच्छा होती है। यह बात औरों के भी अनुभव की है। बहुतों में एक बार का दर्शन आध्यात्मिक भूख लगा देता है और उन्हें फिर-फिर दर्शन करने की उत्कण्ठा होती है। ऐसे भी हैं जिनको एक बार के दर्शन के बाद फिर कभी दर्शन की इच्छा नहीं होती। यह प्रत्येक की अपनी ग्रहण-शक्ति और अभीप्सा पर निर्भर करता है।

४ आश्रम

लोग समझते हैं श्रीअरविन्दाश्रम किसी एक बड़े-से दायरे में शहर से बाहर किसी संस्था की तरह अलग बना होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। आश्रम बनाया नहीं गया है। स्वतः बन गया है। वृक्ष की तरह स्वभावतः विकसित हुआ है। अतः जिस मकान में श्रीअरविन्द रहते थे उसमें तथा उससे कुछ दूरी पर लगभग ६० अलग मकानों में आश्रम-वासी रहते हैं। बीच-बीच में दूसरे नगरवासियों के मकान भी आ जाते हैं। आश्रमवासियों को जोड़ने वाले श्रीअरविन्द तथा माताजी हैं। कोई घिरा हुआ स्थान या

किसी अन्य बाहिरी स्थिति की उन्हें जोड़ने के लिए आवश्यकता नहीं है। हाँ, सब साधक, भोजन, ध्यान आदि के सामुदायिक कार्य प्रायः एक स्थान पर एकत्र होकर मिल कर करते हैं।

आजकल लगभग तीन सौ (३००) साधक वहाँ रहते हैं। इनमें दो सौ के लगभग साधक और शेष सौ के लगभग साधिकायें हैं। कुछ लोग फ्रान्स, इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि के भी आये हुए हैं। कुछ मुसलमान भी हैं। पर यह तो केवल पाठकों के कौतूहल की दृष्टि से लिखा। वहाँ तो वस्तुतः जाति, रंग, मज़हब का कुछ भी भेद नहीं है। वहाँ के वातावरण की एकतानता में इस सब की कल्पना भी नहीं है। वहाँ ये सब एक हैं। प्रान्तों की दृष्टि से गुजरातियों और बंगालियों की संख्या सबसे अधिक है, फिर मद्रासी हैं। महाराष्ट्र की एक-दो महिलाएँ व भाई अभी आये हैं। पंजाब और संयुक्तप्रान्त से पिछले वर्षों ही में ९, १० साधक वहाँ पहुँचे हैं। चार-पाँच बिहार के हैं। राजपूताने के भी एक दो सज्जन हैं। सब साधक अपने समस्त अतीत को, जातीयता, प्रान्तीयता आदि सब राग-भावना को छोड़कर ही आगे बढ़ते हैं। वहाँ की व्यावहारिक भाषा अंग्रेजी है। श्रीअरविन्द और सब भाषाओं के पत्र भी प्रायः पढ़ लेते हैं किन्तु उनका उत्तर सदा अंग्रेजी में ही होता है। आपस में साधक बंगाली, गुजराती, फ्रेञ्च,

तामिल, तेलुगु और हिन्दी में भी बात करते हैं। कुछ मद्रासियों के अतिरिक्त हिन्दी प्रायः सब समझते हैं। महिलाएँ तो प्रायः निरपवाद रूप से हिन्दी में बातचीत कर सकती हैं, और समझ सकती हैं। भारतीय भाषा का प्रतिनिधित्व यहाँ हिन्दी ही करती है, यद्यपि मूलतः संयुक्त-प्रान्त के तो तीन-चार ही साधक हैं और वे भी अपेक्षया नये। हिन्दी के ठीक जाननेवाले तो अवश्य गिने-चुने ही हैं।

५ ब्रह्मचर्य

आश्रम में पति-पत्नी सम्बन्ध से कोई नहीं रह सकता। ऐसे साधक भी हैं, जिनकी पत्नी भी उनके साथ या कुछ बाद में आश्रमवासिनी साधिका के रूप में स्वीकृत हुई, किन्तु वे सब जुदा रहते हैं। वहाँ जितने साधक-साधिका रहते हैं, वे केवल साधना के लिए ही। सब साधक-साधिकाओं का सम्बन्ध सीधा माताजी और श्रीअरविन्द से है। अतः वहाँ स्त्री-पुरुषों का परस्पर सम्बन्ध एक मा-जाये भाई-बहिनों का पवित्र सम्बन्ध है। यही सम्बन्ध उनका है जो पूर्व जीवन में परस्पर विवाहित दम्पति के रूप में रहे हैं।

श्रीअरविन्द ब्रह्मचर्य पर अत्यधिक बल देते हैं। जो व्यक्ति काम-वासना को सर्वथा शान्त नहीं करना चाहे, उसका श्रीअरविन्दाश्रम में कुछ काम नहीं है। ऐसे आदमी को श्रीअरविन्द कहते हैं कि यदि तुम इसके लिए भी तैयार

नहीं हो तो तुम बाहर दुनिया के सामान्य जीवन में ही रहो, यह मार्ग तुम्हारे लिए नहीं है। मैं जहाँ तक अनुभव कर सका हूँ, यहाँ तक यही कह सकता हूँ कि वहाँ ब्रह्मचर्य का प्रबल वातावरण है। सब इसका प्रेम से पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

६ आश्रम-नियम

बहुत से लोग आश्रम के नियम या प्रवेश के नियम पूछते हैं। पर वहाँ ऐसे कोई छपे हुए नियम नहीं हैं, क्योंकि यह कोई सार्वजनिक संस्था नहीं है। असल में यहाँ बाह्य-नियमों का कुछ महत्त्व है ही नहीं। सायंकाल ७ और ८ बजे के बीच में जो सम्मिलित ध्यान होता है जिसमें माताजी आती हैं उसमें सबका सम्मिलित होना भी कोई आवश्यक नियम नहीं है। बाह्य नियम के तौर पर केवल कुछ लिखे हुए नियम हैं जो आश्रम में आकर रहनेवाले को पढ़ने के लिये दे दिये जाते हैं।

साधक रूप में आश्रम में प्रविष्ट होने का भी कुछ रेखाबद्ध नियम नहीं है। श्रीअरविन्द कहते हैं कि मैंने किसी को नहीं बुलाया है। जो व्यक्ति उनसे आश्रमवासी होने की प्रार्थना करते हैं, उन्हें वे अपनी दृष्टि के अनुसार ही स्वीकृत या अस्वीकृत करते हैं। वे स्वीकृत (आश्रम में प्रविष्ट) उसे ही करते हैं जिसे वे अपने योगकार्य का अधिकारी समझें या उसमें किसी प्रकार सहायक समझते हों।

मैं बहुत-सी अच्छी संस्थाओं और आश्रमों को अन्दर से जानता हूँ। पर मैंने जितनी कम से कम रगड़ के साथ, शान्ति के साथ इस आश्रम का काम चलता देखा है, वैसा और कहीं नहीं। इसका कारण यही है कि यहाँ सब लोग श्रीअरविन्द में पूर्ण-भक्ति से प्रेरित होकर ही आये हैं और इसी श्रद्धा से यहाँ रहते हैं। इस परिवार का उद्देश्य—जैसा कि मैं बताने का यत्न करूँगा—अत्यन्त महान् है। यह भी यहाँ की व्यवस्था की उच्चता का कारण है। और फिर इस आश्रम में व्यक्तियों को पूरा परख कर लिया जाता है। यह कहा जा सकता है कि श्रीअरविन्द अपनी दिव्य-दृष्टि से देखकर ही किसी को आश्रमवासी बनाते हैं अतः इस आश्रम में सब कुछ श्रीअरविन्द व माताजी की आज्ञा ही है, और सब लोग उन्हें अपना पूरा समर्पण करके रहने का यत्न करते हैं। एवं यहाँ बाह्य नियम-बन्धन कोई नहीं है, पर आन्तरिक स्वाभाविक बन्धन बहुत दृढ़ है।

यद्यपि यह आश्रम कोई सार्वजनिक संस्था नहीं है, तो भी आश्रम के व्यय का पूरा-पूरा हिसाब रखा जाता है। बेशक उस हिसाब को देखने का जनता का अधिकार हो ऐसी बात नहीं है। जैसे अपने घर की सजीव व्यवस्था के लिए आय-व्यय का पूरा नियन्त्रण रखना आवश्यक है, उसी तरह श्रीअरविन्द के इस घर में होता है। यह सब

कुछ उनकी अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति है, सब पर उनका या माताजी का अपना स्वत्व है, और आश्रमवासी इस विशाल घर में उनके अपने बच्चे हैं।

दर्शकों को आश्रम दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती। कभी-कभी किन्हीं विशेष अवस्थाओं में माताजी की आज्ञा लेकर ही दिखाया जाता है। इसलिए वैसी उत्सुकता मन में लेकर वहाँ किसी को नहीं जाना चाहिये।

७ भोजन-व्यवस्था

बहुतों को शायद ऐसा भ्रम होगा कि वहाँ आहार के विषय में कोई संयम-नियम नहीं है। वहाँ जाने से पहले मैंने भी यह सुन रखा था कि वहाँ मांस, शराब का भी परहेज नहीं है। पर वहाँ जाकर मैंने इस बात को एकदम ग़लत पाया। गौ का दूध, दही, बिना मसाले का शाक व दाल, चावल, केले, नींबू और बिना छने आटे की डबल रोटी—यही वहाँ का नियत आहार है। मांस, मछली, शराब का वहाँ कुछ काम नहीं, मिर्च-मसाले और सिगरेट आदि सब का निषेध है। यह निषेध उन थोड़े-से नियमों में लिखा हुआ है जो कि आश्रमवासी होने पर पढ़ने को दिये जाते हैं।

वहाँ तीन समय भोजन होता है। प्रातः-सायं का भोजन हलका होता है। आश्रमवासियों का भोजन निम्न प्रकार से है।

प्रातराश—पावभर गो-दुग्ध, एक चम्मच कोको-द्रव, डबल रोटी के तीन टुकड़े और केला।

मध्याह्न—चावल, रोटी, दाल या शाक, नींबू का एक टुकड़ा, पाव-भर दही, दो केले।

सायम्—पाव-भर दूध, रोटी, शाक।

श्रीअरविन्द और माताजी भी फलों का रस, दूध, शाक, शाकरस, रोटी आदि दही थोड़ी मात्रा में सेवन करते हैं।

भोजन बनाने का सब काम साधक-साधिकाओं के हाथ में है। अतः वहाँ का भोजन बहुत सफ़ाई से बनता है। भोजन बार-बार नहीं परोसा जाता। भोजनशाला के एक कमरे में एक बड़ी-सी मेज़ पर भोजन-सामग्री स्वच्छता और व्यवस्था से रखी रहती है। तीन-चार साधक ठीक समय पर वहाँ देने के लिए खड़े रहते हैं। अन्य साधक अपने-अपने समय पर आते हैं। भोजन लेते हैं, और दूसरे बड़े कमरों में बिछे आसनों पर बैठकर, सामने रखी तिपाइयों पर अपनी थाली रखकर शान्ति से भोजन करने लग जाते हैं। साधिकाओं के बैठने की व्यवस्था अलग कमरों में है। जो साधक कार्यवश नियत समय से कुछ देर में आते हैं, उनके लिए एक अलग कमरा है। वहाँ एक जालीदार अलमारी में उनके भोजन की थाली ढककर रख दी जाती है। जब उन्हें अवकाश मिलता है, वे आकर

अपना भोजन कर जाते हैं। बर्तन माँजने-धोने का काम भी साधक ही करते हैं।

डबल रोटी बनाने के लिए आश्रम की अपनी बिजली की चक्की और बेकरी है। यहाँ भी सब काम साधक ही करते हैं।

८ अन्य व्यवस्था

उनके योग में 'कर्म' को उत्तम स्थान प्राप्त है। वहाँ सभी साधक अपनी साधना के अंग के तौर पर कुछ न कुछ कार्य करते हैं। माताजी जिस साधक को जो काम सौंपती हैं, उसे वही करना होता है। और प्रायः साधक उसे अपना कल्याणकारी कार्य समझकर, भगवदर्पण बुद्धि से करते हैं। 'कर्म' साधना से अलग नहीं हो जाता। अपितु दिये गये अपने-अपने 'कर्म' में ही साधक अपनी आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया को परखता है और अपनी स्थिति को समझने का प्रयत्न करता है। आटा पीसना, डबल रोटी बनाना, रसोई पकाना, सफ़ाई, द्वार-रक्षा, बढ़ई का काम, वस्तु-विभाग, लोहारी, उद्यान-विभाग, टाइपिंग, ग्रन्थ-लेखन, कविता, संगीत, चित्राङ्कन, आलेख्य, वस्तु-वितरण, पुस्तकालय-प्रबन्ध, चिकित्सा, दफ़्तरी काम आदि सभी प्रकार के काम जो आश्रम में किये जाते हैं उन सबको साधना की दृष्टि से, समता, पवित्रता, सौन्दर्य और विवेकपूर्ण शान्ति से करने का यत्न किया जाता है।

प्रत्येक साधक अपना वही कार्य करता है, जो उसे सौंपा गया है, अथवा जिसे करने की उसने अनुमति प्राप्त कर ली है। मैं कह चुका हूँ ऊपर से देखने में वहाँ साधक को बहुत स्वाधीनता है; पर अपने अन्तर्नियम से प्रत्येक साधक बँधा हुआ है। वहाँ कोई ऐसा सार्वजनिक नियम भी नहीं है कि साधक इतने बजे जागें, इतने बजे स्नान करें, इतने बजे सोयें—आदि। फिर भी प्रत्येक साधक अपनी वैयक्तिक दिनचर्या का पालन करने में सचेत रहता है।

आश्रम में कुछ ऐसी चीजें हैं जो एक प्रकार के लोगों को जरा अखरती हैं, उनके अपने मन में समझे हुए यौगिक वायुमण्डल के ही उन्हें विपरीत लगती हैं। जैसे माताजी का नित्य नयी रेशमी साड़ी पहिन कर आना, फूलों का बहुत निरर्थक सा उपयोग होना, साधकों का सौन्दर्य-पूर्ण या कुछ आरामतलबी का सा जीवन। किन्हीं दूसरों को वहाँ प्रथम दृष्टि में कुछ रहस्यमयता या ढोंग सा भी दीखता है। पर ये सब ऊपरी दृष्टि की बातें हैं। मुझे स्वयं पहिले दिन माताजी को—वे एक योरोपियन महिला हैं, रेशमी साड़ी पहिने बैठी हैं इस रूप में देखकर—प्रणाम करने की भी इच्छा नहीं होती थी। पर पीछे से, उनकी दिव्यता का कुछ अनुभव हो जाने पर सब बात बिलकुल पलट गई। ऐसा बहुतों के साथ होता है। अस्तु! यहाँ तो इतना ही

कहना था कि वहाँ के आश्रम जीवन में, जैसे माताजी का अन्तः-प्रेरित अनुशासन, व्यवस्था और शान्ति वहाँ की एकदम दीखनेवाली अद्भुत विशेषतायें हैं वैसे ही वहाँ के जीवन में सौन्दर्य या कलापूर्णता भी है।

९ व्यय

पाठकों को उत्सुकता होगी कि इस प्रकार दो तीन सौ साधकों का व्यय कैसे चलता होगा। प्रसंगवश यह कहना अनुचित न होगा कि आश्रम में जो भी श्रम-विभाग चलते हैं, वे सब, आश्रम की आन्तरिक आवश्यकता के लिए ही चलते हैं। किसी भी रूप में आश्रम की बनी कोई चीज़ बेची नहीं जाती। और फिर अनुमानतः आश्रम का खर्च भी ७, ८ हज़ार रुपए मासिक से कम नहीं होगा।—वैसे तो जो आश्रमवासी के रूप में स्वीकृत होता है, वह अपना सब कुछ (जहाँ अपना अन्तरात्मा और मन, वहाँ अपना सब भौतिक धन भी) मा के चरणों में अर्पित कर देता है। इस प्रकार कुछ सम्पत्ति आश्रम को मिली है। पर वह बहुत थोड़ी है। आश्रम में अधिकांश तो ऐसे ही साधक हैं, जिनके पास एक कौड़ी भी नहीं थी। प्रत्येक आश्रमवासी पर ३०-३५ रुपया मासिक तो व्यय होता ही है।—यह रुपया कुछ भक्त लोगों से अनायास प्राप्त होता है। श्रीअरविन्द ने कभी आश्रम के लिए चन्दे की अपील नहीं की। बल्कि औरों को भी आश्रम के लिए धन एकत्र करने

की कभी अनुमति नहीं दी। आश्रम को सार्वजनिक संस्था नहीं समझते। अतः जनता से न माँगते हैं और न जनता के प्रति उत्तरदायित्व समझते हैं। जो कुछ स्वभावतः आता है उसी से उनका कार्य चलता है। श्रीअरविन्द की इस विषय में भी अपनी ही विशेष दृष्टि है। किसी मिलते हुए धन को वे अस्वीकृत भी कर देते हैं—यह तो देखा गया है। पर वे किस दृष्टि से अस्वीकार करते हैं यह मैं नहीं जानता। वे मानते हैं कि यह परमेश्वर का ही कार्य है, परमेश्वर ही रुपया देता है और देगा। जो कुछ उन्हें मिलता है उसे भगवान् से मिला जानकर ही स्वीकार करते हैं। अतएव धन के व्यय आदि के विषय में वे अपने को भगवान् के ही प्रति उत्तरदायी समझते हैं, अन्य किसी के प्रति नहीं। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि वहाँ कभी-कभी आर्थिक तंगी होती है, तो भी अर्थाभाव के कारण उनका कार्य कभी भी रुका नहीं है।

१० योग-मार्ग

श्रीअरविन्द जिस योग के गुरु हैं उसे उनके शब्दों में 'पूर्णयोग' कहना चाहिये। यह योग, हठयोग व राजयोग आदि की तरह, केवल शरीर या मन आदि से सम्बन्ध रखने वाला नहीं, किन्तु सम्पूर्ण आधार और सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्ध रखता है।

पूर्णयोग शक्ति—ईश्वरीय शक्ति—को मुख्य मानकर

चलता है। श्रीअरविन्द ने 'The mother' में लिखा है कि तीन बातें हैं जो कि मनुष्य को अपने प्रयत्न से सतत करनी हैं। फिर, शेष सब माता की शक्ति कर देगी। पहली बात है अभीप्सा। परमेश्वर की तरफ जाने की अभिकांक्षा, दूसरी बात जो हमें करनी है, वह है, 'अस्वीकार' या 'त्याग' अर्थात् अपने अन्दर की हीन प्रकृति की गतियों का त्याग। तीसरी बात है आत्म-समर्पण, पूर्ण शरणागति, ये यत्न हम करते रहें, तो ऊपर से उतरनेवाली ईश्वरीय शक्ति हममें अद्भुत परिवर्त्तन करके हमें भगवान् का विशुद्ध यन्त्र बना देगी।

ऐसा कहा जा सकता है कि इस मार्ग में ऊपर से (सिर के ऊपर) शक्ति के अवतरण का तथा अन्दर (हृदय में) पवित्रता और भक्ति आदि की स्थापना का अभ्यास किया जाता है। इन दोनों केन्द्रों का विकास आवश्यक है।

श्रीअरविन्द के मार्ग की दो विशेषताएँ हैं। पहली है—विज्ञानमय अवस्था को प्राप्त करना। उनका कहना है कि अभी तक संसार मनोमय दशा से ऊपर नहीं उठ सका है। और जब तक इससे ऊपर न उठ जाय तब तक इस संसार में कोई वास्तविक उन्नति व परिवर्तन नहीं हो सकता। इसलिए उनके योग का पहला ध्येय उस परमोच्च अवस्था तक पहुँचना है। और फिर उस अवस्था तक पहुँच कर भी वहीं स्थित हो जाना नहीं है, किन्तु उस

विज्ञानमय शक्ति को नीचे लाकर अपने मन, प्राण और शरीर का सर्वथा दिव्य रूपान्तर कर देना है। अतः दूसरी बात है—'दिव्य रूपान्तर' (Transformation)। इस प्रकार यह योग-मार्ग अपनी इस आरोह-अवरोह की उज्ज्वल प्रक्रिया से इस धरती की अत्यन्त स्थूल मरणावसन्न जड़ता को उस परम चैतन्य की ज्योति और दिव्य-जीवन के सम्पर्क द्वारा नवीन उद्बोधन और सनातन जीवित सौन्दर्य की ओर ले जाता है। श्रीअरविन्द की मान्यता है कि पहले के यद्यपि कोई विरले योगी विज्ञानमय तक पहुँचे थे, पर उन्होंने भी उसकी शक्ति द्वारा अपने नीचे के भागों का रूपान्तर करने की आवश्यकता नहीं समझी या नहीं कर पाये। कुछ ने मन तक का रूपान्तर किया, पर प्राण और शरीर के रूपान्तर का कार्य शायद किसी ने नहीं किया। श्रीअरविन्द की साधना के पिछले दस वर्ष 'शरीर का रूपान्तर इस दिव्य-शक्ति द्वारा किया जा सकता है या नहीं?' इसी प्रयत्न में बीते हैं। और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, नवम्बर उन्नीस सौ छब्बीस में उन्हें इस साधना में सफलता प्राप्त हो गई। अतएव चौबीस नवम्बर का दिवस उनका सिद्धि-दिवस माना जाता है।

११ श्रीअरविन्द का साहित्य

योगी हो जाने के बाद से श्रीअरविन्द का सब साहित्य उनकी 'आर्य' नामक अंग्रेजी मासिक पत्रिका के १९१४ में

प्रकाशित होने से प्रारम्भ होता है जो कि ७ वर्ष तक निकली; और एक तरह से उसी के साथ समाप्त भी हो जाता है। क्योंकि उसके बाद उन्होंने कुछ प्रकाशनार्थ लिखना है या कोई ग्रन्थ लिखना है, ऐसा करके कुछ भी नहीं लिखा है। उनकी जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं वे या तो 'आर्य' पत्रिका में निकले उनके लेखों के संशोधित या परिवर्द्धित संग्रह हैं या साधकों को उनके प्रश्नों के उत्तर में लिखे पत्रों के अंशों के सुव्यवस्थित संकलन हैं।

जो हो, श्रीअरविन्द का यह साहित्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उनकी यह अद्भुत विद्वत्तापूर्ण या ज्ञानप्रकाश-पूर्ण और अन्दर की तहों तक में प्रकाश पहुँचाने वाली तथा आत्मा को उद्बुद्ध एवं जागृत करनेवाली वाणी ही है जो बहुतों को श्रीअरविन्द की तरफ सहसा आकृष्ट करती है और उनकी महिमा को दिखाती है। बहुतों का इधर आना उनके साहित्य के स्पर्श से ही हुआ है। मुझे तो श्रीअरविन्द के एक दो वाक्य ही कहीं से पढ़ लेने से आत्मिक भोजन-प्राप्ति, आत्मिक तृप्ति मिल जाने को काफ़ी होते हैं। इसलिये मैं तो प्रत्येक पाठक से कहूँगा कि यदि वह श्रीअरविन्द को और जानना चाहता है, उनसे लाभ उठाना चाहता है, तो वह उनका साहित्य जरूर पढ़े।

वैसे जीवन-सम्बन्धी कोई विषय नहीं है, जिस पर श्रीअरविन्द ने आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं लिखा है, सभी

प्रकाश डाला है। योग, वेद, दर्शन, काव्य, समाजशास्त्र—सभी पर उन्होंने संसार के लिये अपना सन्देश दिया है; केवल उसे सुनने की जरूरत है।

पर उस सब साहित्य का विवेचन करना तो यहाँ सम्भव नहीं। पर चूँकि उनके सीधे योग-सम्बन्धी साहित्य को पढ़ना चाहनेवाले बहुत मिलते हैं और जरूर पूछते हैं कि हम कौन-कौन-सी पुस्तक पढ़ें, इसलिये उनके लिये इतना लिख देना पर्याप्त और उपयोगी होगा कि वे पहिले कुछ निम्न क्रम से निम्न पुस्तकें पढ़ें। (इनमें से जिनका हिन्दी-अनुवाद हो गया है उनके हिन्दी संस्करण का नाम भी सामने लिख दिया है):—

(१) The Yoga and Its Objects	(१) हमारा योग और उसके उद्देश्य
(२) The Mother	(२) माता
(३) Essays on the Gita	(३) गीता-प्रबन्ध
(४) Lights on Yoga	(४) योग-प्रदीप
(५) Bases of Yoga	(५) योग के आधार
(६) The Riddle of This World	(६) इस जगत् की पहेली

उनकी सब से बड़ी और मुख्य पुस्तक है The Life Divine। जो उनके दर्शन को पूर्णतया विस्तार से समझना चाहता है उसे यह पुस्तक अवश्य पढ़नी होगी। पर संक्षेप

में उनकी विचारधारा को दिखाने के लिये उनकी एक सुन्दर छोटी-सी पुस्तक है Thoughts and Glimpses। योग-सम्बन्धी उनकी विस्तृत लेख-माला का नाम है Synthesis of Yoga, जो अभी पुस्तकाकार नहीं छपी। कुछ समय में उसके प्रकाशित होने की आशा है।

इसी प्रकार माता जी की प्रार्थनाओं की पुस्तक बहुत ही बढ़िया है। उसका एक भाग अंग्रेजी में Prayers and Meditations of the Mother नाम से अभी छपा है। पर सब से पहले तो (ऊपर के लिखे हुवे क्रम में पहले या दूसरे स्थान पर ही) उनकी 'Words of the Mother' पुस्तक पढ़नी चाहिये, जिसका कि 'मातृ-वाणी' नाम से हिन्दी में अनुवाद हो चुका है।

इसके अतिरिक्त वेद आदि पर भी उनका साहित्य है जिसका कि वर्णन करने का स्थान नहीं।

१२ भावी कार्य-क्रम

'क्या वे फिर राजनैतिक क्षेत्र में आयेंगे?' यह प्रश्न है जो प्रायः पूछा जाता है। यह प्रश्न आम लोगों के लिए स्वाभाविक भी है। पर जो मनुष्य जान गये हैं कि वे कितने अति महान् कार्य में लगे हैं, उनके लिए ऐसे प्रश्नों का अवकाश नहीं रह जाता। यद्यपि अभी तक (अभी मद्रास में काँग्रेस-सरकार आने पर यह हटा था) उनके दरवाजे के सामने फ्रेञ्च और ब्रिटिश सी० आई० डी० का

पहरा लगातार लगा रहा है, और उस मकान में घुसनेवाला व्यक्ति अपने विषय में पता लगाये जाने से अपने को बचा नहीं सकता, तो भी यह सच है कि वहाँ विशुद्ध आध्यात्मिकता के सिवाय और कुछ नहीं है। सन् उन्नीस सौ छब्बीस तक तो श्रीअरविन्द यह कहते रहे कि 'अभी नहीं', 'अभी कुछ नहीं कह सकता।' पर उसके बाद से तो वे उस महान् कार्य में लग चुके हैं, जिसका कुछ संकेत हमने ऊपर किया है। यह कार्य है एक नयी 'जाति' उत्पन्न करना, मनुष्य को देव बनाना। वे ऐसा मनुष्य तैयार कर रहे हैं जो विज्ञान-तत्त्व को प्राप्त करेगा और उसके कारण उसका मन अज्ञान और संशय की क्रीड़ा-भूमि न रहकर सत्य ज्योति का निर्मल मार्ग बन जायगा, उसका प्राण बदलकर, काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि से सर्वथा शून्य होकर कार्य करेगा और उसके शरीर का भी ऐसा रूपान्तर हो जायगा कि वह यूँ ही मृत्यु के वश न होगा। यह बहुत भारी साधना है, इसमें शायद एक युग लग जाय; परन्तु श्रीअरविन्द जिस कार्य के लिए आये हैं, वह यही कार्य है। इसी महान् कार्य का प्रकट आरम्भ इस आश्रम की अनुमति

उन्होंने किया है। यद्यपि वे बोलते और मिलते नहीं हैं, तो भी लिखकर और अपनी आन्तरिक शक्ति से आश्रम का पथ-प्रदर्शन करते हैं। उनके लगभग ६ घण्टे प्रति-दिन साधकों के पत्रों के उत्तर देने में या उनकी वासरी अथवा

दिन-चर्या-पुस्तकों को देखने और निर्देश लिखने में व्यतीत होते हैं। दिन-रात में शायद तीन-चार घण्टे ही वे निद्रा लेते हैं। वह सोना भी एक प्रकार से अपनी उच्च चेतना में ऊपर हटकर शारीरिक विश्राम लेना ही कहा जाना चाहिये। शेष १६, २० घण्टे वे कुछ-न-कुछ 'कर्म' करते ही हैं। ठीक बात यह है कि उनका बहुत-सा समय ध्यान व विज्ञानमय शक्ति द्वारा विविध कार्य करने में जिनमें साधकों को सहायता पहुँचाना भी है—व्यतीत होता है। दूसरे शब्दों में उनका समय उनकी अपनी उस जगत्व्यापी साधना को उत्तरोत्तर अभिव्यक्त करने में लगता है जिस (अर्थात् विज्ञानमय शक्ति द्वारा भौतिक जगत् पर प्रभाव डालने) का अनुभव कर लेने पर वे इस तरह एकान्तसेवी हो गये हैं। वे इस समय जितना कार्य कर रहे हैं, उतना कार्य कोई साधारण पुरुष नहीं कर सकता। देश की स्वाधीनता तो उनके इस महान् कार्य में कहीं स्वयमेव आ जायगी। उसकी कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

मेरा तो यही विश्वास है कि वहाँ पर एक बड़ा भारी आध्यात्मिक कार्य हो रहा है, जिसकी महत्ता को चाहे अभी हम नहीं समझ रहे, पर जिसे समझने का समय बड़े वेग से समीप आ रहा है।

★

श्रीअरविन्द की हिन्दी पुस्तकों की सूची

श्रीअरविन्द और उनका योग	...	मूल्य ॥)
योगप्रदीप	...	,, ॥)
इस जगत् की पहेली	...	,, ॥=)
माता	...	,, ॥)
योग के आधार	...	,, २)
हमारा योग और उसके उद्देश्य	...	,, ॥)
गीता-प्रबन्ध (प्रथम भाग)	...	,, ४)

इसके अतिरिक्त श्रीअरविन्द की अंग्रेजी, बंगला आदि भाषाओं की सब पुस्तकें भी यहाँ से मिल सकती हैं।

मिलने का पता:—

श्रीअरविन्द-निकेतन

एस० एन० संडरसन के साथ

डाकपेटी ८५

कनाट सर्कस

नयी देहली।

प्रकाशक और मुद्रक श्री डा० इन्द्रसेन जी मंत्री श्रीअरविन्द-निकेतन, द्वारा रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस, २३, दरियागंज, दिल्ली में मुद्रित।